विद्यापतिकालीन मिथिला में दास-प्रथा

लेखक

इन्द्रकान्त झा

मानवता के इतिहास के साथ ही दास-प्रथा चली आ रही है। प्राचीनकाल में दास-प्रथा के अन्तर्गत लोगों का शोषण हुआ करता था। मध्यकाल में इसका रूप दास-वृत्ति हो गया और आधुनिक काल में दास के अन्तर्गत वे लोग माने जाते हैं, जिन्हें हम मजदूर कहते हैं।[1] वास्तव में दास-प्रथा के ये ही तीन रूप थे, जो सभ्यता के क्रमशः तीन चरणों के द्योतक हैं। प्रारम्भ में यह प्रथा गृह-कार्यादि तक ही सीमित थी, किन्तु उत्पादन वृद्धि तथा शोषण-प्रवृत्ति के उत्तरोत्तर विकास के साथ ही इस प्रथा के रूप में भी परिवर्त्तन होते गये। जो दास या दासी प्रारम्भ में परिवार के अंग के रूप में थे, वे ही क्रमशः आधुनिक काल मे दास-प्रथा का निकृष्टतम स्थान ग्रहण करनेवाले तथा शोषण का प्रतीक मान लिये गये।

ब्राह्मण-ग्रन्थों में इस प्रथा का उल्लेख पाया जाता है। ऐतरेय ब्राह्मण में स्पष्ट रूप से यह घोषणा की गयी है कि जो शूद्र दूसरों का दास है, उसे इच्छानुसार निष्कासित तथा वध किया जा सकता है।[2] तात्पर्य यह कि शूद्र के पास अपनी कोई सम्पत्ति नहीं रहती थी और न उसे राजा के विरुद्ध कुछ बोलने का अधिकार था। शूद्र अथवा दास यज्ञ नहीं कर सकते थे और न वे वेदाध्ययन के ही अधिकारी माने जाते थे। यदि कोई इस प्रकार का दुस्साहस करता था तो वह अत्यन्त भयानक यातना का शिकार होता था। इस संदर्भ में महाभारत में कई उदाहरण प्राप्य हैं, जैसे शम्बूक (शूद्र) को तपस्या करने के कारण ही रामचन्द्र के द्वारा वध का शिकार होना पड़ा।[3] उस समय शूद्रों की स्थिति इतनी दयनीय थी कि वे (शूद्र) राजाओं के द्वारा उपहार में दिये जाते थे। मिथिला के सर्वश्रेष्ठ तत्त्वज्ञानी महाराज जनक ब्राह्मणों पर प्रसन्न होकर उन्हें शूद्र दास उपहार-रूप में देते थे। वृहदारण्यक उपनिषद् में ऐसा कहा गया कि महर्षि याज्ञवल्क्य की विद्वत्ता से प्रसन्न होकर उन्हें राजा जनक ने अनेक शूद्र उपहार में दिये।

महात्मा बुद्ध के युग में भी शूद्र की स्थिति में सुधार की अपेक्षा ह्रास ही हुआ। उस समय में दास-प्रथा ने एक संस्था का रूप धारण कर लिया,[4] जिसके सम्बन्ध में अनेक दृष्टान्त

---

१ उपेन्द्र ठाकुर, दी इन्स्टिट्यूट ऑफ स्लेभरी इन मिथिला, इन्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली, भाग ३५, १९५९ ई, पृ० २०९—It is the first form of exploitation, peculiar to the ancient world; it is succeeded by serfdom in the middle ages and wage labour in the more recent period.

२ ऐतरेय ब्राह्मण; २९. कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इन्डिया, भाग १, पृ० १२७–१२९।

३ महाभारत, अनुशासन पर्व (शूद्र मुनि संवाद)।

४ इन्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली, भाग ३५ पृ० २१०—Coming to the age of the Buddha we find that slavery had now become an established institution.

बौद्ध साहित्य में मिलते हैं।[५] दास की सन्तान अपनी पैत्रिक वृत्ति में रहती थी। दास-दासी अपने स्वामी के घर में रहते थे और गृह-कार्य करते थे।[६] विधुर पंडित[७] जातक में चार प्रकार के दास का उल्लेख किया गया है —

१. अमाया—जन्मजात दास
२. धनेन क्रीता—धन से खरीदा दास
३. स्वयं उपायंसी—स्वेच्छा से बना दास
४. भयभवन्ति—भय से बना दास

बौद्ध युग में दास-दासी की बिक्री भी प्रारम्भ हो गयी थी।[८] इसके अतिरिक्त श्रमणों एवं ब्राह्मणों द्वारा लोगों को उपहार के रूप में दास दिये जाते थे।[९] इस प्रकार दासों का व्यापार भी प्रारम्भ हो गया था।[१०]

शास्त्रानुसार सेवक (शुश्रूषु) पाँच प्रकार के होते थे। इनमें चार प्रकार तो विविध कार्यों में लगे होते थे, जबकि पाँचवाँ प्रकार दास-कर्म में ही लगा होता था।[११] भृत्य के कार्य तीन प्रकार के थे—उत्तम, मध्यम और अधम तथा दास के कार्य दो प्रकार के थे—शुभ एवं अशुभ। उत्तम भृत्य उन्हें कहा गया है, जो अपनी शक्ति भर अस्त्र-शस्त्र का कार्य करते थे; मध्यम वे थे, जो कृषि-कार्य करते थे और अधम भार आदि ढोने का कार्य करते थे।[१२] सन्नपादल सुत्र में सेवक के स्थान का उल्लेख मिलता है—सेवक सबसे सवेरे जागता और सबके अन्त में सोता था। वह अपने स्वामी को प्रसन्न करने के लिये सदा उनके आदेश की प्रतीक्षा में खड़ा रहता था। वह समयानुकूल खुशामदी वचनों का प्रयोग करता था और दूसरे व्यक्ति को अपने पक्ष में रखने के लिये सतत प्रयत्नशील रहता था।[१३]

---

५ वही, पृ० २१०-११।

६ कुलावक जातक, सं० ३१; नन्द जातक, सं० ३९; काका जातक, सं० १४०; उरग जातक, सं० ३५४; कुस जातक, सं० ५३१; कुणाल जातक, सं० ५४२।

७ विधुर पंडित जातक, सं० ५४५।

८ सत्तुभस्त जातक, सं० ४०२।

९ बरुआ, इन्सक्रिप्शन ऑफ अशोक, भाग २, पृ० ३०७।

१० वही, पृ० ३०८।

११ वाचस्पति मिश्र, विवाद-चिन्तामणि, सम्पादक पं० लक्ष्मी कान्त झा, पृ० ६२—

शुश्रूषकः पंचविधः शास्त्रे दृष्टो मनीषिभिः।
चतुर्विधः कर्म्मकरः शेषा दासास्त्रिपञ्चकाः॥

१२ वही, पृ० ६४—

उत्तमस्त्वायुधीयोऽत्र मध्यमस्तु कृषीवलः।
अधमो भारवाहः स्यादित्येवं त्रिविधो भृतः॥

१३ बरुआ इन्सक्रिप्शन ऑफ अशोक, भाग २, पृ० ३०७—"a servent rising up earliar sleeping latter, always waiting for the bidding working to please, speaking to flatter and looking to another person for favour."

इतना ही नहीं, दास के अशुभ कार्य—घर, द्वार, राह एवं शौच स्थान की सफाई आदि भी थे। वह उच्छिष्ट अन्न भोजन करता था और पालतू कुत्ते की तरह सदैव अपने स्वामी का अनुगमन करता था। इसके अतिरिक्त और जो कार्य थे, उनकी गणना शुभ कर्म में ही होती थी।[१४]

दास और सेवक में केवल नाम का अन्तर था। किसी-न-किसी रूप में दोनों को ही सारे कार्य आवश्यक रूप से करने पड़ते थे। कितने ही कोशों में दास और सेवक में अन्तर नहीं दिखलाया गया है।[१५] मेधातिथि में भी स्पष्ट रूप से कहा गया है कि स्नान करानेवाले, प्रसाधक, रसोइया और निश्चित कार्य करनेवाले दास हैं।[१६]

विद्यापतियुगीन मिथिला में दास-दासी के रूप में परिवर्त्तन हो गया था। उस समय यहाँ दास-दासी प्रथा का नग्न नृत्य हो रहा था। इस प्रथा में वृद्धि के उपर्युक्त कारण तो थे ही; परन्तु इसके साथ-साथ एक कारण यह भी था कि तद्‌युगीन मुसलमान बादशाह और सामन्त वर्ग दास-दासी का पालन-पोषण करते थे।[१७] ज्योतिरीश्वर ने नायक के अनेकानेक गुणों मे 'भृत्य-भरण' का भी उल्लेख किया है। वे विलासिता की चरम सीमा पर पहुँच गये थे। अपना कोई भी कार्य अपने हाथ से करना वे अपमानजनक समझते थे। तद्‌युगीन राजा को तेल मालिश करने के लिये चार सेवक (मरदनिया) नियुक्त रहते थे।[१८] उन्हें स्नान कराने के लिये भी अलग सेवक रहते थे।[१९] स्नानोत्तर वस्त्र ले आनेवाला पृथक् सेवक रहता था।[२०] पूजादि की व्यवस्था के लिये और सेवक था।[२१] भोजनादि की व्यवस्था करने के लिये पृथक् सेवक रहता था।[२२] पीने के जल का प्रबन्ध दूसरा ही सेवक करता था।[२३] भोजनोपरान्त पान देने के लिये परिचारिका रहती थी।[२४] पान की व्यवस्था करने के लिये स्वतंत्र भृत्य रहता था।[२५] पुनः जब वे शयन-कक्ष में विश्राम

---

१४ विवाद-चिन्तामणि, पृ० ६५—

अशुभं दासकर्मोक्तं शुभं कर्म करे स्मृतम् ।
गृहद्वाराशुचिस्थानरथ्यावस्करशोधनम् ॥
गुह्याङ्गस्पर्शनोच्छिष्टविरमूत्रग्रहणोज्झनम् ।
गच्छतः स्वामिनः स्वाङ्गैरुपस्थानमथान्ततः ॥
अशुभं कर्म विज्ञेयं शुभमन्यदतः परम् ।

१५ लल्लनजी गोपाल, दी इकोनोमिक लाइफ ऑफ नर्दन इण्डिया, पृ० ७८ ।

१६ वही, पृ० ७८-७९ ।

१७ राधा कृष्ण चौधरी, हिस्ट्री ऑफ बिहार, पृ० १७९ ।

१८ वर्णरत्नाकर, पृ० ११ ।

१९ वही ।

२० वही, पृ० १२ ।

२१ वही ।

२२ वही, पृ० १२-१३; लिखनावली, पृ० २५, २६ पत्र ४०

२३ वही, पृ० १३; वही, पृ० २६-२७, पत्र ४२ ।

२४ वही, पृ० १३-१४ ।

२५ वही, लिखनावली, पृ० २६, पत्र ४१ ।

करने को जाते थे तब पैर दबाने के लिये हजाम प्रस्तुत रहता था।[२५] इस प्रकार प्रमाणित होता है कि राजा और अन्य सम्पन्न व्यक्ति के कार्य-संपादन के लिये पृथक्-पृथक् सेवक-सेविका अथवा दास-दासी की व्यवस्था थी।

राजा के यहाँ जो परिचारिकायें या सैरन्ध्रियाँ रहती थीं, वे केवल अपने देश की ही नहीं, प्रत्युत अन्य देशों की भी रहती थीं। जिस जनपद से जो परिचारिका आती थी, उस परिचारिका नाम वही जनपद रखा जाता था।[२७] वे अनेकानेक गुणों से समन्वित रहती थीं। उनका प्रथम गुण था युवावस्था।[२८] वे सुशीला, सुन्दरी, कोमलांगी, गौरवर्णा, श्यामा, रक्तवर्णा आदि विभिन्न रंग और रूप की होती थीं।[२९] वे माधुर्य एवं मनोहरता के साथ-साथ चौंसठ कलाओं में प्रवीण रहती थीं।[३०] उनका सम्मान साधारण दास-दासी से अधिक होता था। वे विविध प्रकार के अलंकारों से अलंकृत एवं चित्र-विचित्र वस्त्रों से सुसज्जित तथा अंगराग आदि से सुवासित रहती थीं।[३१] कार्यव्यस्तता की स्थिति में उनलोगों के आभूषणों की ध्वनि से अन्तःपुर मुखरित रहता था।[३२]

दास-दासी की वृद्धि का दूसरा कारण मुसलमानी आक्रमण था। विजयी मुसलमान विजित राज्य के लोगों को दास बनने के लिये विवश कर देते थे।[३३] प्रायः सम्पूर्ण भारत के विजित राजाओं के राज्य से पकड़कर जिसे वे लाते थे, उसको दास बना लेते थे। मिथिला-नरेश भी नेपाल, कश्मीर, मगध, तैलंग, महाराष्ट्र, गौड़, कन्नौज आदि की परिचारिकाओं को रखे हुए थे।[३४] मुसलमान मिथिला के राजाक्षों से जबर्दस्ती दास छीन लेते थे। इसीलिए मिथिला के रहनेवाले अपने दास को छिपाकर रखते थे।[३५] उन लोगों के द्वारा ही यहाँ दास-प्रथा का निकृष्ट रूप बेगारी[३६] प्रथा का प्रारम्भ हो गया था। वे राह में जाते राहगीरों को पकड़कर अपने काम में लगा लेते थे। राजा असलान के मरने के उपरान्त मिथिला में अशान्ति का

२६ वही, पृ० १४…नाउ जनदुइ पएर सम्हाहन करइने अछ।

२७ वही, पृ० ६३।

२८ वही।

२९ वही।

३० वही।

३१ इन्द्र कान्त झा, विद्यापतिक रचनाक आधार पर तद्युगीन मिथिलाक सामाजिक जीवन, पटना विश्वविद्यालय के पी० एच० डी० उपाधि के लिये स्वीकृत शोध-प्रबन्ध १९६७ ई० पृ० १०२।

३२ वर्णरत्नाकर, पृ० ६३।

३३ लल्लन जी गोपाल, दी इकोनोमिक लाइफ ऑफ नर्दर्न इन्डिया, पृ० ८०; वर्णरत्नाकर, पृ० ६३।

३४ वर्णरत्नाकर, पृ० ६३।

३५ म० म० उमेश मिश्र कीर्त्तिलता (सम्पादक) पृ० ४३।

३६ विद्यापतिक रचनाक आधार पर तद्युगीन मिथिलाक सामाजिक जीवन (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध), पृ० १०३ का पादटिप्पणी ४।

साम्राज्य हो गया था। उस समय मुसलमान जिस-किसी को बेगारी करने के लिये पकड़ लेते थे।[३७]

दास-दासी-प्रथा की वृद्धि का तीसरा कारण साधारण जनता की आर्थिक स्थिति भी था। लोग अपने पेट की भूख शान्त करने के लिये दासता की जंजीर में जकड़ जाते थे। उस युग में १५ प्रकार के दासों का उल्लेख मिलता है[३८]—

१. गृहजात :—घर की दासी से उद्भूत।

२. क्रीतः —खरीदा हुआ।

३. लब्धः —उपहार में मिला।

४. दायादुपागतः —अपनी पैत्रिक परम्परा से प्राप्त—जिस प्रकार चल एवं अचल पैत्रिक सम्पत्ति का बँटवारा होता था, उसी प्रकार दास का बँटबारा भी होता था। आज भी मिथिला में यह परम्परा प्रचलित है।

५. अनाकालभृतः—अकस्मात् दुर्भिक्ष आदि के समय में प्राप्त।

६. व्यक्तस्वाम्य—जो अपना स्वामित्व छोड़कर बंधक रूप में लग जाता है।

७. स्वामिनाऽऽहितः—मालिक से बेचा गया।

८. महतःऋणात् मोक्षितः—बहुत बड़े ऋण से उद्धार किया गयाा।

९. युद्धे प्राप्तः —युद्ध में जो जीत लिया जाता था।

१०. पणे जितः —बाजी में जीता गया।

११. तवाहमित्युपागतः—"आपके हम हैं" यह कहकर जो पास आता था।

१२. प्रव्रज्यावसितः—संन्यासी रूप में आकर जो रह जाता था।

१३. भक्त दास—भक्तिपूर्वक जो आकर रह गया।

१४. बडवाभृतः[३९]—दासी के साथ जो भृत्य आ गया।

१५. आत्मविक्रेता—अपने को बेच लेनेवाला।

इसके अतिरिक्त जिस दासी का विवाह किसी अन्य मालिक के दास के साथ हो जाता था, वह दासी अपने पूर्व मालिक की न होकर अपने पति के मालिक की दासी हो जाती थी।[४०] दास-दासी का दान लोग विभिन्न प्रकार की इष्टसिद्धि के लिये करते थे।[४१] यहाँ

---

३७ म० म० उमेश मिश्र, कीर्त्तिलता, पृ० २९ बाट जाइते बेगार धर।

३८ विवाद-चिन्तामणि, पृ० ६५—

गृहजातस्तथा क्रीतो लब्धो दायादुपागतः।
अनाकालभृतस्तद्वदाहितः स्वामिना च यः॥
मोक्षितो महतश्चर्णाद् युद्धे प्राप्तः पणे जितः।
तवाहमित्युपगतः प्रव्रज्यावसितः कृतः॥
भक्तदासस्तु विज्ञेयस्तथैव वडवाभृतः।
विक्रेता चात्मनः शास्त्रे दासाः पञ्चदश स्मृताः॥

३९ वही, पृ० ६८।

४० वही, पृ० ७०।

४१ विद्यापति, दानवाक्यावली, सम्पादक, (संशोधक) फणि शर्मण, विक्टोरिया प्रेस बनारस, सं० १९४०, पृ० २१८-२२१।

दुर्गा-पूजा के अवसर पर दासी-दान का प्रचलन खूब था।[४२] डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने दान में प्राप्त दास-दासी का स्थान तीसरी कोटि मे रखा है।[४३] उस युग में परस्पर उपकार के रूप में भी एक दूसरे का दासत्व स्वीकार करता था। विद्यापति की नायिका अपनी सखी से कहती है कि अगर आप हमें वल्लभ से नेत्र-मिलन करा दें तो मैं आपकी दासी हो जाऊँगी। यथा—

बालभु साँ मझु दीठि मिलावहि होइहों दासी तोरी।[४४]

ऊपर जितने प्रकार के दासों की चर्चा की गयी है, वे सभी जाति के दास नहीं हो सकते थे; क्योंकि कात्यायन ने स्पष्ट कहा है कि प्रव्रज्या दास केवल क्षत्रिय और वैश्य का दासत्व स्वीकार कर सकता है, ब्राह्मण का नहीं।[४५] साधारणतः शूद्र का दास ब्राह्मण नहीं हो सकता था। जिस प्रकार कोई नारी अपना कुल-धर्म त्याग कर दूसरे के बाहुपाश में बँध जाती है, उसी प्रकार स्वधर्मत्यागी ब्राह्मण शूद्र का दास हो सकता है।[४६] ब्राह्मण को अपनी जाति का दासत्व स्वीकार करने का अधिकार नहीं था। किन्तु यह नियम था कि प्रयोजनवश यदि कोई ब्राह्मण किसी अन्य शीलाध्ययन-सम्पन्न ब्राह्मण का दासत्व करता था तो उसे चाहिये कि ऐसे दास से अशुभ कार्य नहीं करावे।[४७] करुणावश किसी सुसंस्कृत ब्राह्मण को दास रूप में नियुक्त करनेवाले राजा द्वारा दंडित होते थे।[४८] इसके अतिरिक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य जाति के दास से जाति-धर्मानुकूल कार्य लिये जाते थे।[४९] किसी कुलवती स्त्री को दासी बनानेवाला राजा द्वारा दंडित होता था।[५०] क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र—ये तीनों वर्ण ब्राह्मण के दास हो सकते थे। इसके अतिरिक्त ये तीनों जातियाँ परस्पर एक दूसरे का दास हो सकती थीं।[५१]

दास-दासी की चोरी भी अन्य वस्तुओं की भाँति प्रचलित थी। इस चोरी पर प्रतिबन्ध लगाने के लिये राजा के द्वारा अनेक प्रकार के नियम-कानून बनाये गये थे। जिसके दास की चोरी हो जाती थी, वह राजा के कर्मचारी—'धर्माधि-करणिक' अथवा 'महाधर्माधिकरणिक' के यहाँ मुकदमा करता था। लिखनावली के एक पत्र से ज्ञात होता है कि दास-दासी के मुकदमे में उसके 'भरण-पत्र' एवं गवाही की आवश्यकता

---

४२ विद्यापति, दुर्गाभक्तितरंगिणी, परिशोधित, परमेश्वर शर्मण, राजकीय यंत्रालय दरभंगा, १९०२ ई, पृ० १०३।

४३ गौरीचन्द हीराचन्द ओझा, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ० ४८।

४४ मित्र मजूमदार, विद्यापति, पृ० १५९, पद २१३।

४५ विवाद-चिन्तामणि, पृ० ६६।

४६ वही, पृ० ७०।

४७ वही, पृ० ७१।

४८ वही।

४९ वही—

क्षत्रियञ्चैव वैश्यञ्च ब्राह्मणो वृत्तिकर्षितः।
विभृयादानृशंस्येन स्वानि कर्माणि कारयेत्॥

५० वही, पृ० ७२।

५१ वही, पृ० ७१।

भी पड़ती थी। प्रस्तुत साक्ष्य पत्र में कोई साक्षी कहता है कि अमुक कायस्थ अमुक उपाध्याय के हाथों १० रूप्य टंक[५२] में शूद्र के पति-पत्नी को बेचे हुए था। मैं जानता हूँ कि 'यह सत्य है'।[५३]

साक्ष्य-पत्र में साक्षी के सत्य के महत्त्व और मिथ्या-भाषण के परिणाम भी सूचित कर दिये जाते थे। इससे ज्ञात होता है कि साक्षी मिथ्या भाषण नहीं करता था। यथा—

अश्वमेधसहस्रञ्च सत्यञ्च तुलया धृतम्।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेवातिरिच्यते।
ब्रूहि साक्षिन्न यद्वृत्तं कम्पन्ति पितरस्तव।
तवासत्यप्रसादेन पतन्तु पितरस्तव॥
नग्नो मुण्डः कपाली च भिक्षार्थी क्षुत्पिपासितः।
क्रुद्धशत्रुकुलं गच्छेद्यदि साक्ष्यनृतं वदेत्[५४]॥८४॥

अर्थात्—हजारों अश्वमेध यज्ञ और सत्य को तराजू पर मापने के बाद परिणामतः अश्वमेध यज्ञ से सत्य का पलड़ा ही भारी होता है। अतएव हे साक्षी! आप सत्य कहें। आपके पितर डोल रहे हैं। यदि आप झूठ बोलेगें तो परिणामतः आपके पितर अपने स्थान से पतित हो जायँगें। अगर साक्षी झूठ बोले तो वह नंगा हो, माथ मुड़ाये, हाथ में कपाल लिये और भूखा-प्यासा अपने क्रुद्ध शत्रु के घर में जाय।

एक दूसरे पत्र से भी ज्ञात होता है कि देवदत्त की चार दासियों को किसी ने मर्यादा का उल्लंघन करके पकड़ लिया था। उसका मुकदमा 'महाधर्माधिकरणिक' के यहाँ हुआ था। इसके गवाह दो ब्राह्मण थे। प्रस्तुत पत्र में वादी को लिखा गया था कि आप गवाही के बयान को सुनने के लिये अमुक तिथि को आइये। यदि उस निर्धारित तिथि पर नहीं आयँगे तो आप की हार हो जायगी और साथ-साथ 'जुर्माना' सहित चारों दासियों को लौटाना पड़ेगा।[५५]

इस प्रकार ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में ब्राह्मण की सत्यता पर समाज का अटूट विश्वास था। वह किसी भी मुकदमे में गवाह का कार्य कर सकता था।

आलोच्य-युग में दास-दासी की खरीद-बिक्री एवं बंधक की प्रथा खूब प्रचलित थी। लिखनावली के अनेक पत्रों से ज्ञात होता है कि शूद्र-शूद्री एवं दास-दासी का क्रय-विक्रय एक साधारण घटना हो गया था। कीर्तिलता में विद्यापति ने स्पष्ट रूप से कहा है कि—"षरीदे षरीदे बहुतो गुलामो"।[५६] अर्थात् गुलाम की खरीद-बिक्री खूब होती थी।

शूद्र-शूद्री अथवा दास-दासी के क्रय-विक्रय में उन लोगों की सहमति की कोई

५२ विद्यापतिक रचनाक आधार पर तद्युगीन मिथिलाक सामाजिक जीवन, पृ० २५९।

५३ विद्यापति, लिखनावली, सम्पादित, दरभंगा, १९०२ ई, पृ० ५१, पत्र ८४—उपाध्यायश्री-अमुकपिनरि उपाध्याय श्रीअमुकशर्म्मणि कायस्थश्रीअमुकेन रूप्यटङ्कदशतयमूल्यमादाय शूद्रोऽमुकः सपत्नीको विक्रीत इत्यहं जनामीति सत्यम्।

५४. वही।

५५ वही, पृ० १५-१६, पत्र २१।

५६ उमेश मिश्र, कीर्त्तिलता, पृ० २६।

आवश्यकता नहीं होती थी। उन लोगों की बिक्री के लिये 'भरण-पत्र' (दस्तावेज) लिखा जाता था।[५७] उस 'भरण-पत्र' पर सर्वप्रथम दिन, तिथि, मास एवं लक्ष्मण, संवत्-तत्कालीन राजा के नाम के साथ उनकी विरुदावली, शूद्र-शूद्री या दास-दासी के क्रेता का नाम, ग्राम, शूद्र-शूद्री के नाम, पिता का नाम, रूप, रंग, अवस्था, उसका मूल्य एवं उसका कार्य आदि अंकित रहते थे। तत्पश्चात् उसमें यह भी अंकित रहता था कि यदि वह दास-दासी भागकर राजा के सिंहासन के नीचे भी जा छिपे तो वहाँ से भी क्रेता उसे लाकर पुनः उसे निर्धारित दास-कर्म में लगा सकते थे। 'भरण-पत्र' के लेखक कायस्थ होता था। उसका लिखापन (पारिश्रमिक) दोनों पक्षों को देना पड़ता था। 'भरणपत्र' की प्रामाणिकता
के लिये गवाह भी रहते थे। उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत 'भरणपत्र' द्रष्टय है :—"सिद्धिः।
परमभट्टारकेत्यादिराजाबलीपूर्व्वगतराजश्रीलक्ष्मणसेनदेवीयनवनवत्यधिकद्विशततमे वर्षे
भाद्रशुक्लचतुर्द्दश्यां शुक्रवारान्वितायामेवं मासपक्षतिथिदिवसानुक्रमेण कालेऽभिलिख्यमाने
यत्राङ्केनापि ल०सं० २९९, भाद्रशुदि १४ शुक्रे पुनः परमभट्टारकेत्यादिसमस्तप्रक्रियाविराज-
मानपुण्यावलोकाश्वपतिगजपतिनरपतिराजत्रयाधिपतिराजसहस्रसंसेव्यमानखोदायवरलब्धप्रसा-
दसकलविरूदावलीसमलङ्कृतमहासुरत्राणसाहि प्रचारे, पुनः समस्तप्रक्रियाविराजमा-
नरिपुराजकंसनाराणशिवभक्तिपरायणशीलपुण्यावलोकमहाराजाधिराजश्रीअमुकदेवपादानां संभु
-ज्यमानराज्ये तीरभुक्तौ रत्नपुरदेशप्रतिबद्धमोगोतप्पासंलग्नसिम्बराग्रामे श्रीअमुकदत्ताः
शूद्रशूद्रीक्रयणार्थं स्वधनं प्रयुङ्क्ते। धनग्राहकश्चै तत्सकाशात् नामतो राउत्तश्रीअमुकदत्तः
केनापि चाड्येन स्वदासं कैवर्त्तं वर्षचतुश्चत्वारिंशत्समुद्देशितवयस्कं श्यामवर्णं अमुकनामानं
रूप्यटङ्कषट्तयेन तथैव तस्य वधूं समुद्देशितवर्षत्रिंशद्वयस्कां गौरवर्णां अमुकीनाम्नीं
रूप्यटङ्कचतुष्टयेन तथैव तयोः पुत्रं वर्षषोडशतयोद्देशितवयस्कं गौरवर्णं अमुकनामानं
रूप्यटङ्कत्रयेण तथैव तयोः पुत्रीं वर्षाष्टतयोद्देशितवयस्कां श्यामवर्णामिमुकीनाम्नीममीषु
धनिषु गोत्रागोत्रनिवारकं दत्त्वा चन्द्राक्कविधिना विक्रीतवन्तः। यत्र विक्रीत शूद्र-शूद्री प्राणी ४,
विक्रयाङ्क १४, गोत्रागोत्रनिवारकाय समुभयदेये २/२। तदमीशूद्रा धनिकावासे हलवाहनोच्छिष्ट-
स्फेटनपानीयानयनदोलोद्वाहनादिसकलकर्म करिष्यन्ति। यदि कदाचित्प्रपलाय्य गच्छन्ति,
तदाऽनेन पत्रप्रामाण्येन राजसिंहासनतलगता अपि समुद्धृत्यानीय तदेते पुनर्द्दासकर्म्मणि
युज्यन्ते। अत्रार्थे साक्षिणः देवदत्तयज्ञदत्तविष्णुमित्रादयः कृता भूताश्चेति। लिखितमिदमुभ-
यानुमत्या कायस्थश्रीअमुकेन। लिखापन देय समुभय रु १/१ इति। भरणपत्रमपीदमेव योज्यं।
दत्तरूप्यटंङ्क १४, त्रिक्रयाङ्क धनं परीक्ष्य गृहीतं पत्रस्था एव साक्षिणः[५८] ॥५५॥

उपर्युक्त 'भरणपत्र' से ज्ञात होता है कि दास का सम्पूर्ण परिवार एक ही 'भरण-पत्र' पर बिक जाता था।

लिखनावली के एक अन्य पत्र से ज्ञात होता है कि जो शूद्र अपने को स्वयं बेचता था, उसके मूल्य का निर्धारण एक मध्यस्थ (पंच) द्वारा किया जाता था।[५९] एक

---

५७ लिखनावली, पृ० ३७-३८, पत्र ५५ एवं ५६।

५८ वही, पृ० ३६-३८, पत्र ५५।

५९ वही, पृ० ३८, पत्र ५६—

राउत्तश्रीअमुकाः शूद्रक्रयणार्थं स्वधनं प्रयुङ्क्ते धनग्राहकोऽप्यमीषां सकाशात् नामतः राउत्तश्रीअमुकः पञ्चमध्यस्थकृतमूल्येन रूप्यटङ्कद्वयेनात्मानमात्मना चन्द्रर्कावधिना विक्रीतवान्।

शूद्र का मूल्य दो 'रूप्य टंक' निर्धारित किया गया था।[६०] परन्तु लिखनावली के उपर्युक्त पत्र से ज्ञात होता है कि मालिक द्वारा दास की बिक्री छः 'रूप्य टंक' में की गयी थी। एक अन्य पत्र से भी ज्ञात होता है कि सपत्नीक दास की बिक्री १० 'रूप्य टंक' में हुई थी।[६१] इस प्रकार ज्ञात होता है कि आत्म-विक्रेता शूद्र का मूल्य किसी मालिक द्वारा बेचे गये दास से कम होता था। इसके अतिरिक्त तत्कालीन समाज में दास के विवाह कराने का भार मालिक पर ही रहता था। मालिक अपने दास के विवाह के लिये किसी अन्य मालिक से दास-कन्या का क्रय करते थे, जिसका मूल्य बाजार-मूल्य से कम लगता था। दास-कन्या की बिक्री विवाह के लिये की जाती थी। इसीलिये इस पत्र को 'गौरीवराटिका' कहा जाता था। इस पत्र में दास-कन्या के विक्रेता स्पष्ट रूप से लिख देते थे कि मैं 'विवाह विधि' से अमुक-नामकी कन्या को बेच रहा हूँ। इस प्रकार की दासी की बिक्री चार 'पुराण'[६२] में होती थी।[६३]

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि आत्म-विक्रेता शूद्र का दाम मध्यस्थ द्वारा निर्णीत होता था। परन्तु मालिक के दास की विक्री बिना मध्यस्थ की हो जाती थी। शूद्र-शूद्री या दास-दासी की बिक्री "चन्द्रार्कावधि" के लिये होती थी।

क्रेता दास-दासी की खरीद के बाद एक महीना तक उसकी परीक्षा करते थे। यदि उन्हें पसन्द नहीं हुआ तो उसे उस अवधि के अन्तर्गत किसी दिन वापस कर सकते थे। परन्तु एक महीना के उपरान्त उसकी वापसी नहीं होती थी।[६४]

प्रयोजनवश मालिक अपने शूद्र-शूद्री अथवा दास-दासी को वैधानिक रूप से बंधक भी रख सकते थे। इसके लिये भी एक व्यवस्थापत्र लिखा जाता था। उसका नाम भी 'भरणपत्र' ही था। उसकी व्यवस्था भी पूर्व उल्लिखित भरणपत्र के सदृश होती थी। लिखनावली के एक पत्र से ज्ञात होता है कि शूद्र बंधक राज्य-कर देने के लिये रखा गया था।[६५] उस

---

६० वही···यत्र विक्रीत आत्माप्राणी १ विक्रयांक रूप्यटंक २...।

६१ वही पृ० ५१ पत्र ८४।

६२ ताम्बा के सिक्का को पण कहा जाता था। तिब्बती यात्री धर्मस्वामी के अनुसार एक पण का मान ८० कौड़ी था (बायोग्राफी ऑफ धर्मस्वामी, इन्ट्रोडकशन, पृ० २८)। बृहत् हिन्दी कोश (पृ० ७३१) से ज्ञात होता है कि एक पण का मान ११ या २० माशा था परन्तु संस्कृत हिन्दी कोश (पृ० ५६६) से ज्ञात होता है कि १ पण का मान ८ या ८० कौड़ी था। इससे ज्ञात होता है कि पण का मान समय-समय पर बदल गया था। धर्मस्वामी रामसिंहदेव के समय में मिथिला आये थे। अतएव पण के सम्बन्ध में उनका जो विचार हैं, वही मान विद्यापतिकालीन मिथिला में पण का था।

६३ लिखनावली, पृ० ४५, पत्र ६०—

अमुकग्रामे उपाध्याय श्रीअमुकाः शूद्रीक्रयणार्थं स्वधनं प्रयुञ्जते धनग्राहकोऽप्येतत्सकाशान्नामतः कायस्थ श्रीअमुकः कैवर्त्तशूद्रश्रीअमुकस्य सुतां अमुकी नाम्नीं कन्यां गौरीवराटिका पुराणचतुष्टयमादायकैवर्त्तशूद्रश्रीअमुकस्यसुतश्रीअमुकेषु विवाहविधिना विक्रीतवान्। यत्र विक्रीत प्राणि शूद्री १ विक्रयांक ४।

६४ विवाद-चिन्तामणि, पृ० ६०।

६५. लिखनावली, पृ० ३९, पत्र ५७...राउत श्री अमुकः राजकरदेयाद्ये न सर्व्ववारांव्यूढ़िमेकां रूप्यटङ्कचतुष्टयमादाय···।

दास का भरनेदार (बंधक रखनेवाला) उसे प्रतिदिन एक आदमी का भोजन और साल में एक सनक पट तथा एक रूई का कपड़ा (धोती) देते थे।[६६] 'भरणपत्र' पर यह शर्त रहती थी कि वह दास धनिक (पूर्व स्वामी) के घर में जिस प्रकार जितना कार्य करता था, नये स्वामी के घर में भी उसी प्रकार उतना कार्य वह करेगा।[६७] यदि वह दास कार्य नहीं करता था तो पूर्व मालिक को व्यूढ़िपात के सम्बन्ध से प्रतिदिन काकिणीषटतय[६८] (६ कौड़ी) बंधक लेनेवाले को देने का विधान था।[६९] यदि वह दास कहीं भाग जाता था तो भरना रखनेवाले को भरना की जितनी राशि रहती थी, उतनी राशि के साथ-साथ बहिभु'जापक' भी वापस करना पड़ता था।[७०] कारण, साधारणतया यह नियम था कि 'बहिभु'जापिका' दोनों पक्षों को लगती थी।[७१] लिखनावली के एक पत्र से ज्ञात होता है कि 'वहिभु'जापक' प्रतिदिन छह काकिणी थी। एक दूसरे पत्र से ज्ञात होता है कि 'वहिभु'जापक' दो 'पण' थे। इस प्रकार ज्ञात होता है कि दास-भरना वा बन्धक का नियम बहुत कठोर था। भरना में भरना रखनेवाले पर ही दास-दासी का उत्तरदायित्व रहता था। अतएव इससे प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में दास-दासी की कमी नहीं थी। दास-बन्धक लेने वालों का ही अभाव था। दास-दासी के क्रय-विक्रय की प्रथा १७वीं-१८वीं शताब्दी तक अत्यन्त प्रचलित थी। इस युग में दास-दासी के क्रय-विक्रय-पत्रक को गौरीवराटिका, बहिखत, अजातपत्र, एकरारपत्र, जनौढ़ि, निस्तारपत्र, आदि कहा जाता था।[७२]

उपर्युक्त चार प्रकार के दासों को छोड़कर और सभी प्रकार के दास अपनी दासता की जंजीर से मुक्त हो सकते थे। अकाल के समय जो कोई दास बन जाता था, वह मालिक को दो बल या गाय देकर दासत्व से मुक्त पा लेता था।[७२*] ऋण लेकर दास बननेवाला ऋण के चुकाने पर दासत्व से मुक्ति पा लेता था।[७३] बन्धक में लिया गया दास बन्धक

---

६६ वही, पृ० ४०, पत्र ५८……शूद्रस्य प्रतिदेनदेय पुरुषाहार १ प्रतिवर्षदेय सणकपट-कपासपट १…।

६७ वही… दासो धनिकदास इव सकल दासकर्म करिष्यति…।

६८ पण अथवा माशा के चौथाई भाग को काकिनी कहा जाता था।

६९ लिखनावली, पृ० ३९, पत्र ५७—
शूद्र द्वारा धनिकगृहे भाटोद्वहनादि कर्म्म कारयिष्यन्ति यदि न कारयन्ति तथा व्यूढ़िपात-सम्बन्धेन प्रतिदिनं काकिनी षटतयं धनिकस्य प्रयच्छन्ति……।

७० वही, पृ० ४०, पत्र ५८…दासपलायनपक्षे बन्धकांक वहिभु'जापकोदेयात्……।

७१ वही।

७२ जयकान्त मिश्र, हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिटरेचर, भाग १, पृ० ३८२-३८८; इन्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली; भाग ३५, पृ० २०९-२२६; जर्नल ऑफ दि बिहार रिसर्च सोसाइटी, १९५८ ई०, पृ० ४७-५२।

७२* विवाद-चिन्तामणि, पृ० ६७; मिशरु मिश्र, विवादचन्द्र, सम्पादक पं० रामकृष्ण झा, १९३१ ई, पृ० ४८—

अनाकालभृतो दास्यान्मुच्यते गोयुगं ददत्।
भक्षितश्चापि यद्वर्गे न तच्छुद्धति कर्मणो॥

७३ विवाद-चिन्तामणि, पृ० ६८; विवादचन्द्र, पृ० ४९—

ऋणं तु सोदयं दत्वा ऋणी दास्याद्विमुच्यते ॥७॥

की रकम चुका दिये जाने पर दासत्व से स्वतंत्र हो जाना था।[७४] निश्चित समय के लिये दासत्व स्वीकार करनेवाला उस अवधि के समाप्त हो जाने पर मुक्त हो जाता था।[७५] रण में अथवा पण में विजित दास अपना स्थापन्न देकर ही दासता से मुक्ति पाता था।[७६] भक्तदास अपनी भक्ति त्याग कर दासत्व से स्वतंत्र हो जाता था।[७७] यदि किसी दासी को पुत्रहीन मालिक द्वारा पुत्र प्राप्त होता था तो वह दासता की वेड़ी मुक्त तो होता ही था, उसका बेटा स्वामी का उत्तराधिकारी भी बन जाता था।[७८] अपने मालिक की प्राण-रक्षा करने वाला दास दासत्व से मुक्त कर दिया जाता था और मालिक की सम्पत्ति का, पुत्र के समान अंश-भागी बनाया जाता था।[७९] कभी-कभी दास की सेवा से प्रसन्न होकर मालिक उस दास को दासता की कड़ी से मुक्त कर देते थे। इस विधान के अनुसार स्वामी दास के कन्धे पर एक जल से भरा हुआ घड़ा रखकर उसे फोड़ देता था। इसके बाद दास के सिर पर पुष्प, अक्षत एवं जल आदि छिड़के जाते थे। इस क्रम से तीन बार उसे पूर्वाभिमुख करके मालिक यह कहते कि 'यह अदास है', मुक्त कर दिया जाता था।[८०] दासत्व से मुक्ति का यह शास्त्रीय विधान था। विद्यापतिकालीन मिथिला में दासत्व मुक्ति के लिये 'निस्तारपत्र' देने की व्यवस्था थी, जिसका विवरण इस प्रकार हैं :—

"सिद्धिः। गंगातीरे पण्डित श्रीअमुकाः शूद्रश्रीअमुकेषु निस्तारपत्रीं प्रयच्छन्ति। अस्माकं न्यायधनक्रीतेन दासेन त्वया महती सेवा कृता। तत्सेवापरितुष्टैरस्माभिश्चन्द्रार्कावधिना दासो निस्तारितोऽसि। सुखेन यत्र तिष्ठसि यत्र वा गच्छसि तत्र क्वाप्यस्माकं त्वयि धने च स्वत्वं नास्तीति। अत्र धर्म्म एव साक्षीति[८१] ॥ ६७ ॥

---

७४ विवादचन्द्र, पृ० ४८।

७५ विवाद-चिन्तामणि, पृ० ६८—कृतकालव्युपरमावकृत कालोऽपि मुच्यते ॥; विवादचन्द्र, पृ० ४९—कृतकालादयुपरमे कृतकालो विमुच्यते ॥८॥ इति वचनात् सावध्यङ्गीकृतदासत्वः कृतकालावधि पूरणादेवादासः स्यात्।

७६ विवादचन्द्र, पृ० ४९—

तवाहमित्युपगतो युद्धे प्राप्तः पणे जितः।
प्रतिशीर्षप्रदानेन मुच्यते तुल्यकर्मण ॥९॥

७७ वही—भक्तस्यापेक्षणात्सद्यो भक्तदासो विमुच्यते; विवाद-चिन्तामणि पृ० ६८।

७८ विवाद-चिन्तामणि, पृ० ६८; विवादचन्द्र पृ ५०।

७९ विवाद-चिन्तामणि, पृ० ६७; विवादचन्द्र, पृ० ४८—

यश्चैषां स्वामिनं कश्चित् मोचयेत् प्राणसंशयात्।
दासत्वात्स विमुच्येत पुत्र भागं लभेत च ॥३॥; विवादरत्नाकर, पृ० १४७-४८—एवा दासानां मध्ये यः प्राणसंशयात्स्वामिनो मोचयिता, सः सद्य एव दासो दासत्वामिमुच्यते पुत्रभागं लभेति चेति।

८० विवाद-चिन्तामणि, पृ० ६८—

स्वदासमिच्छेद्यः कर्त्तुमदासं प्रीतमानसः।
स्कन्धादादाय तस्याशु भिन्द्यात्कुम्भं सहाम्भसा ॥
साक्षाताभिः सपुष्पाभिर्मूर्द्धन्यद्भिस्ताकिरण।
अदास इतिचोक्त्वा त्रिः प्राङ्मुखन्तमथोत्सृजेत् ॥

८१ लिखनावली, पृ० ४४-४५, पत्र ६७।

अर्थात् "मेरे न्यायोपार्जित धन से खरीदे गये, तुमने मेरी बहुत सेवा की है, जिससे प्रसन्न होकर मैंने तुम्हें सदा के लिये दासता से स्वतंत्र कर दिया। अब सुखपूर्वक जहाँ भी चाहो, रहो—जहाँ भी चाहो, जाओ—तुम्हारी सम्पत्ति पर अथवा तुमपर अब मेरा कोई अधिकार नहीं रहा। इसमें धर्म ही साक्षी है।"

इस प्रकार प्रतीत होता है कि तत्कालीन मिथिला में दास को 'निस्तारपत्री' गंगा के तट पर अथवा किसी धार्मिक स्थान में दी जाती थी। 'निस्तारपत्री' में और पत्रों के समान किसी साक्षी की अपेक्षा नहीं रहती थी। यहाँ साक्षी के रूप में धर्म ही रहता था। इस तथ्य से यह एक स्पष्ट धारणा बनती है कि विद्यापति के युग में धर्म के प्रति सजगता ही नहीं, अखंड विश्वास भी व्याप्त था।

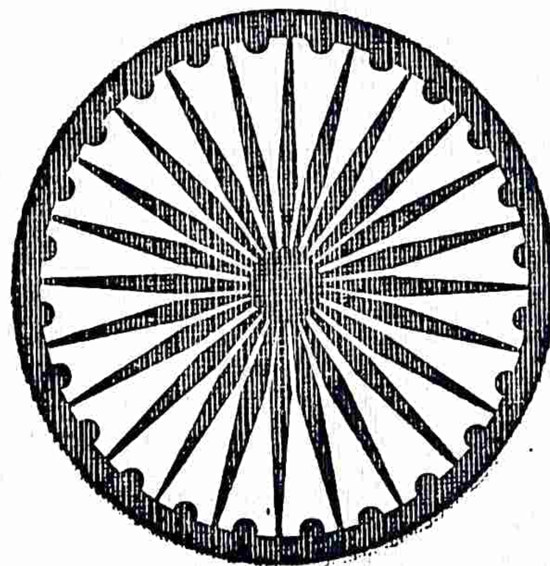
उपर्युक्त विवरण के अवलोकन से ज्ञात होता है कि विद्यापतिकालीन मिथिला के अन्तर्गत दास-दासी का बाहुल्य था। लोगों में दास-दासी का दान अबाध गति से प्रचलित था। इसी का एक रूप भृत्य, सेवक, सैरन्ध्री आदि था। इन लोगों का कर्त्तव्य था—अपने स्वामी की तल्लीनता के साथ अनवरत सेवा करना। उन लोगों को कोई भी धार्मिक अधिकार नहीं था। उन लोगों के लिये स्वामी की सेवा ही धर्म था, जिसका पालन वे आजीवन करते थे। तत्कालीन समाज में स्वतंत्र धंधों के अभाव, दरिद्रता, वंशानुगत दास-प्रथा एवं सामन्त वर्ग के कुचक्र के कारण शूद्र-शूद्री तथा अन्य वर्ण भी दिनानुदिन दासता की शृंखला में आबद्ध हो रहे थे। समाज में इस वर्ग का स्थान अत्यन्त दयनीय था। लिखानावली से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि जो दास-दासी या भृत्यादि मालिक के प्रतिकूल कार्य करते थे, उन्हें रस्सी में बाँधकर ताड़न किया जाता था। इस वर्ग के लोगों को ऋण देने का निषेध था। यह वर्ग यदि अपने स्वामी को छोड़कर अन्य स्थान पर चला जाता था तो पूर्व मालिक उसे पकड़कर ले जाने का अधिकारी था। इस कार्य में तत्कालीन अधिकारी वर्ग भी सहायक होते थे। पशु तथा अन्य वस्तु के समान दास-दासी, शूद्र-शूद्री का क्रय-विक्रय, भरना एवं उपहार रूप में देने-लेने की प्रथा प्रचलित थी। खरीद-बिक्री एवं भरना के लिये दस्तावेज बनाये जाते थे। वंशानुगत दास-दासी का आपस में अन्य सामग्री की तरह बटबारा भी होता था। इसलिये तत्कालीन समाज में इस वर्ग के उत्थान की चिन्ता का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था।

THE JOURNAL
OF
THE BIHAR RESEARCH SOCIETY

VOL. LIII JANUARY—DECEMBER, 1967 PARTS I–IV

CHIEF EDITOR

Shri S. V. Sohoni, M. A., I. C. S.



PUBLISHED BY
THE BIHAR RESEARCH SOCIETY, PATNA
Price Rs. 20/-